श्री मोहन-यश स्मारक ग्रंथमाला ग्रंथाङ्क ८

आराधना सूत्र-संग्रह

(हिन्दी अनुवाद सहित)

प्रकाशक

श्रीखरतर गच्छ मंडन आचार्य श्रीजिनरत्न सूरिजी महाराज के शिष्यरत्न गणि श्रीप्रेममुनिजी के उपदेश से जयपुर निवासी खरतरगच्छ श्रीसंघ की द्रव्य सहाय से श्रीमान् हमीरमलजी गुलेछा।

मुद्रक—वीरपुत्र प्रिंटिङ्ग प्रेस, अजमेर।

वी० सं०	प्रति	वि० सं०
२४७२	१०००	२००३

विषयानुक्रम

श्रीजिनदत्तगुरु कुशलाख्यगुरु प्रवरं,
श्रीजिनचन्द्रगुरु मणिधारकमार्यवरम् ।
तं च नमामि सदाऽक्षयवर प्रतिबोधकरं,
श्रीजिनचन्द्रगुरु ततकीर्त्तियशोनिकरम् ॥ १ ॥

सविद्यो मुनिराजमोहनमुनिर्ज्ञानक्रियासत्तम
स्तच्छिष्या मुनिपुङ्गवा जिनयशः सूरीश्वरा निर्ममाः ।
श्रीमद्‌ज्ञानमुनिश्च केशरमुनिश्चारित्रिणा केशरा,
पूज्य श्रीजिनरत्नसूरिगुरवोऽमी स्युः प्रसन्ना मयि ॥ २ ॥

— * शुद्धि पत्र * —

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	१०	न्पुणा	पुणो
३०	६	कु दूठ	कुदूठ
३२	१२	चयय	वय
३५	२	तिविह	तिविह
३६	११	सक्लि	सकिले
३६	६-७	चउरग	चउर ग
३८	४	मज्जयरा	मज्झयरा
,,	,,	मवम्फ	मरम्फ
,,	,,	म्मरण	मारण
,,	५	सुहास	सुहाण
४६	११	कलुम	कलुम
४७	१०	रुवं	रूव

४८	६	रसगारव	रसगारव
,,	,,	सायागारव	सायागारव
,,	७	मरणे	मरणं
५२	१०	यद्दकमो	यद्दक्कमो
५३	३	सेसाण	सेसाण
,,	४	हराण	हराण
५२	८	सव्व	सव्व
५४	७	सिद्धाण	सिद्धाण
५६	८	सव्य	सव्य
६४	३	फजम	फजम
७५	४	क्समाश्र	क्माश्रो
८५	४	ठाण	ठाण
६०	१०	अचित	श्चित
६०	१	मतो	मतो

६३	३	उनीष	उष्णीष
६४	८	कय	कयया
६५	३	मिन्छाम	मिच्छामि
६६	१२	हेउ	हाउ
१०६	१०	कयाइ	ज कयाइ
१११	१०	पुडवा	पुढवी
१२८	११	य	य
१२६	७	तपि	तपि
१२७	११	मन्त्र	सन्त्र
१३७	२	वइग ग	वईगग
१४६	११	स [illegible]	मन्त्र
१५३	१	मुक्क	निमुक्क
१५४	४	माये	माएणं
१५८	७	उत्तम	उत्तम

१५७	१२	य-नो	य नो
१५८	८	गहीड़	रोहीड़
१६१	१०	कहवि	कहवि
१६६	४	पालि	पालि
१६६	१	तन्हिच्ता	तन्हिच्ता
१६६	१	खि व	खित्त
१६६	३	खुन्त	खुत्त
१७०	८	पुन्ता	पुत्तो
१७१	४	नक्रग तो	नक्रयत्तो
१७२	४	दट ठु	दट ठु
१७२	१०	मुसिाण	मुणिण
१७३	१	अतगडो	अ तगडो
१७४	३	नि ासी	निवासि
	४	द-तो	दत्तो

१७५	१	न्नि	न्नि
१७५	२	ियड़	वियड
१७५	६	सहुल	सठुल
,,	,,	फटठहु	फटठ
१७८	७	ऽकिं	किं
,,	८	समी त्थे	समीरत्थे
१८२	१०	अयपिंड	अयपिंड
१८२	६	भजियय	भंजियय
,	१२	न च	ज च
१८२	११	हु स	हुक्स
१८४	७	मय च	मय च
१८७	१	सआहियंगमगो	संकोडियंगमग
,,	,,	णीह	निद्द
,,	७	दटङ्क	फ्टङ्क

१८८	८	दुग ध	दुगध
१९०	३	रागाण	रागाण
१९२	१०	यहुर	विदुर
१९३	४	दुस्ल	दुक्ख
१९४	०	ज	न
१९८	६	दुस्भर	दुक्कर
२०२	२	अरफो,	आफो
२०३	७	शरण,	शरण
२०५	२	त्रिहित	निहितं
,,	१२	यद्	यद्
२०६	५	दूपणतु	दूपणचतु
,,	६	निन्श्चित	
,,	[illegible]	धामाय	

चउसरण पयन्ना

हिन्दी अर्थ सहित



(तीन आयंबिल कर के यह सूत्र पढ़ना)

सावज्जजोगविरई, उक्कित्तण गुणवओ अ
डिवत्ती । खलियस्स निंदणा वण–तिगिच्छ-
गुणधारणा चेव ॥ १ ॥

पाप व्यापार से निवृत्त होने रूप सामायिक
म का प्रथम आवश्यक है, चौ ...
णा का उत्कृष्ट स्तुति करने रूप

का दूसरा आवश्यक गुणवान गुरु को वंदन करने रूप 'वंदन' नाम का तीसरा आवश्यक, लगे हुए अतिचार रूप दोषों की निंदा करना यह 'प्रतिक्रमण' नाम का चौथा आवश्यक, आत्मा को जो बड़ा दूषण लगा हो, उसको मिटाने के लिये 'काउसग्ग' करना यह पांचवा आवश्यक और गुणों के धारण करने रूप जो 'पच्चक्खाण' किया जाय यह छट्ठा आवश्यक है। अब इन छः आवश्यकों का वर्णन बतलाते हैं ॥ १ ॥

चारित्तस्स विसोही, कीरइ सामाइएण किल इहयं। सावज्जेयरजोगाण, वज्जणासेवणत्तणओ ॥ २ ॥

जिनेश्वर देव के इस शासन में सामायिक से निश्चय करके चारित्र की विशुद्धि होती है, किन्तु 'करेमि भंते! सामाइयं सावज्जं जोग

पच्चक्खामि" आदि सामायिक दण्डक उच्चार कर सावद्य योग का त्याग करने से और "मुक्क था" इरियावहिया पडिक्कमना, सम्भाय करना आदि निरवद्य योग का सेवन करने से होती है ॥२॥

दंसणयाररिसोही, चउवीसाए थएण किज्जइ य । अञ्चब्भुअगुणकित्तण-रूवेण जिणवरिंदाणं ॥ ३ ॥

दर्शनाचार की विशुद्धि 'चउविसत्थो' (लोगस्स) से होती है। कारण? यह चउविसत्थो जिनेश्वर भगवान के अत्यन्त अद्भुत गुणों का कीर्तन रूप चौवीस तीर्थङ्करों की स्तुतिमय है ॥ ३ ॥

नाणाईआ उ गुणा, तस्संपन्नपडिवत्ति

तिहुयणमणुमामना अरिहंता हुतु मे सरणं ॥ १९ ॥

एक ही वचन से प्राणियों का अनेकों शंकाओं को एक ही समय में मिटाने वाले और तीन जगत को उपदेश देने वाले, ऐसे श्री अरिहंतदेवों का मुझे शरण हो ॥१९॥

वयणामएण भुवणं, निव्वावंता गुणेसु ठावंता । जियलोअमुद्धरंता अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥ २० ॥

समस्त जगत् को अपने वचनामृत से शांति पहुँचाने वाले और सद्गुणों में स्थापित करने वाले, एवं जीवलोक का उद्धार करने वाले, ऐसे अरिहंत का मुझे शरण हो ॥२०॥

अन्नुगुणरत, नियजममहग्गमाहि
अदियन। नियगमण्डयणन, पदियनो
मग्णमहिन ॥ २१ ॥

अति अद्भुत गुणवाले और अपने यशरूप
चन्द्रमा से समस्त दिशाओं के अतिम भाग तक
प्रकाशित, ऐसे शाश्वत अनादि, अनन्त अरिहंत
देवों की मैंने शरण स्वीकार किया है ॥ २१ ॥

उज्झियजरमरणाण, समत्तदुक्खत्तसत्त
सरणाण। तिहुअणजणसुहयाण, अरिहंताण
नमो ताण ॥ २२ ॥

जिन्होंने जरा और मरण का त्याग किया है,
समस्त दुःखों से दुःखी होनेवाले प्राणियों को जो
शरणभूत हैं और तीन जगत के लोगों को सुख

जड़ से उखेड़ दिये हैं रागद्वेषरूप शत्रुओं
निर्मल अगूढ लक्ष्यध्यान, सयोगी केवल ज्ञानियों
प्रत्यक्ष देख जाने जाते और स्वभाविक गुण
प न जाने, ऐसे स्वरूप मोक्ष वाले सिद्धों का
शरण हो ॥२६॥

पडिपिल्लियपडिणीया, समग्गझा
णिदड्ढभवबीआ। जोईसरसरणीया, सि
सरण समरणीया ॥ २७ ॥

जिसने रागादि शत्रुओं को तिरस्कृत कि
ग्य भवरूप बीज को ध्यानरूप अग्नि में
भस्म किया है, योगीश्वरों के लिए आश्रयभू
अन्य प्राणियों के लिए स्मरण करने योग्य
सिद्धों का मुझे शरण हो ॥२७॥

पाविअपरमाणंदा, गुणनीसंदा वि

मयरदा । सहुईस्यगसिचदा, सिद्धासरण सविसदद्दा ॥ २८ ॥

परम आनन्द के देनेवाले, गुणों के मारूप, भयके कन्द (मूल-जड़) को नाश करने वाले, अपने केवल ज्ञान के प्रकाश से सूर्य और चंद्रमा को निस्तेज करनेवाले और युद्ध आदि कलहों का नाश करने वाले, ऐसे सिद्धों का मुझे शरण हो ॥ २८॥

उवलद्धपरमबंभा, दुल्लहलंभा विमुक्क संरभा । भुवणघरधरणखंभा, सिद्धा सरण निरारंभा ॥ २९ ॥

जिसको परमब्रह्म (उत्कृष्ट ज्ञान) प्राप्त हुआ है, मोक्षरूप दुर्लभ लाभ मिला है, अनेकों प्रकार के समारम्भ से मुक्त, त्रिभुवनरूप घर के आधार

वास्त स्तंभ समान और समस्त आरम्भ से रहित, ऐसे सिद्धो का शुभ शरण हो ॥२६॥

सिद्धसरणेण नयब-भंहेउसाहुगुणज णिअअणुराओ । मेइणि मिलतसुपसत्थ-मत्थओ तत्थिम भणइ ॥ ३० ॥

सिद्ध भगवंतों के शरण से नय और बारह अंगरूप प्रज्ञ ज्ञानके कारण भूत ऐसे साधु के गुणों का जिससे अनुराग उत्पन्न हुआ है, ऐसा भव्य प्राणी भूमि पर अपना अति प्रशस्थ मस्तक नमा कर इस प्रकार कहता है ॥३ ॥

जिअलोअबंधुणो, कुगइ सिंधुणो पारगा महाभागा । नाणाइएहिं सिवसुक्ख-साहगा सरण ॥ ३१ ॥

जीवलोक के बंधु, कुगति रूप समुद्र का पार पानेवाले, महाभाग्यशाली और ज्ञानादिकों की आराधना से, मोक्ष के सुख को साधनेवाले, ऐसे साधुओं का मुझे शरण हो ॥३१॥

केवलिणो परमोही, विउलमई सुअहरा जिणमयम्मि । आयरियउवज्झाया, ते सव्वे साहुणो सरणं ॥३२॥

केवल ज्ञान वाले परमावधि ज्ञान वाले, विपुल मति मनःपर्यव ज्ञानवाले और श्रुतधर, जिनमत में रहे हुए जो आचार्य उपाध्याय हैं, उन सब साधुओं का मुझे शरण हो ॥३२॥

चउदसदसनवपुव्वी,

गिणो जे अ। जिणकप्पाहालदिय परिहा
रविसुद्धिसाहू अ ॥३३॥

चौदह पूर्वी, दश पूर्वी और नव पूर्वी तथा बारह व ग्यारह अंग के धारण करने वाले एवं जिनकल्पा, यथा ल दा, परिहारविशुद्ध चारित्र वाले, ऐसे साधुओं का मुझे शरण हो ॥ ३३ ॥

खीरामवमहुआसव, संभिन्नसोअकुट्ठबुद्धी
अ । चारणवेउव्विपयाणुसारिणो साहुणो
सरणं ॥३४॥

क्षीराश्रव, मध्वाश्रव, संभिन्नश्रोत, कोष्ठबुद्धि, जंघा व विद्या चारण, वैक्रिय और पदानुसारि, इन लब्धियों वाले साधुओं का मुझे शरण हो ॥ ३४ ॥

उज्झियवइरविरोहा, निच्चमदोहा पसंत-

मुहमोहा । अमिमयगुणमदोहा हयमोहा माहुणो सरण ॥३५॥

जिन्होंने वैर विरोध का त्याग किया है, जो कभी किसी का द्रोह नहीं करते, अतिशय शान्त मुख की शोभा वाले, गुण के समूह का जिन्होंने बहुमान किया है और जो मोह के विनाशक हैं, ऐसे साधुओं का मुझे शरण हो ॥ ३५ ॥

खडिअसिणेहदामा, अकामधामा निकाममुहकामा। सुपुरिसमणाभिरामा, आयारामा मुणी सरण ॥३६॥

जिन्होंने स्नेहरूप बन्धन को तोड़ दिया है एव जो निर्विकार वाले स्थान में रहने वाले और निर्विकार सुख की इच्छा करने वाले हैं, तथा

सत्पुरुषों के मन को आनंदित करने वाले और आत्मानन्द में रमण करने वाले हैं, ऐसे मुनियों का मुझे शरण हो ॥ ३६ ॥

मिल्हिअविसयकसाया, उज्झियघरघरणिसंगसुहसाया । अकलियहरिसविसाया, साहू सरणं गयपमाया ॥३७॥

दूर किये हैं विषय और कषाय जिन्होंने, एवं घर तथा स्त्री सम्बन्ध के सुख को भी जिन्होंने त्याग दिया है, ऐसे हर्ष और विषाद में तन्मय न होने वाले एवं प्रमाद से रहित, ऐसे साधुओं का मुझे शरण हो ॥ ३७ ॥

हिंसाइदोससुण्णा, कयकारुण्णा सयंभुरुप्पण्णा । अजरामरपहखुण्णा, साहू सरणं सुक-

यपुएणा ॥३८॥

हिंसादि दोषा से रहित, करुणाभाव वाले, स्वयंभूरमण समुद्र के जैसी उत्कृष्ट विशाल बुद्धि वाले, जरा और मरण से रहित, ऐसे मोक्षमार्ग में जाने वाले और अतिशय किया है पुण्य जिन्होंने, ऐसे साधुओं का मुझे शरण हो ॥ ३८ ॥

कामविडं बणचुक्का, कलिमलमुक्का विमु क्कचोरिक्का। पावरयसुरयरिक्का, साहुगुणरयण चिचिल्ला ॥३९॥

काम की विडंबना से रहित, पाप कर्म रूप रज (मैल)से रहित, चोरी का त्याग करने वाले, पापरूप रज के कारणभूत ऐसे मैथुन से रहित और साधु के समान गुणरूप रत्नों से दीप्तिमंत, ऐसे साधुओं का मुझे शरण हो ॥ ३९ ॥

मरण पवन्नोह ॥४६॥

जिसमें थाम का उन्माद शांत हो जाता है, देखे हुए और नहीं देखे हुए पदार्थों में जिसने किसी तरह का विरोध नहीं किया है और जो मोक्ष के सुख रूप फल को देने में अमोघ (निष्फल न होने वाला) है, ऐसे धर्म का मैं शरण स्वीकार करता हूं ॥ ४६ ॥

नरयगइगमणरोह, गुणसमदोह पवाइनि क्खोह । निहणियवम्महजोहं धम्म, सरणं पवन्नोह ॥४७॥

नरक गति के गमन को रोकने वाला, सद्गुणों के समूह वाला, महान् में महान् भी अन्य वादियों से क्षोभ नहीं पाने वाला, और काम रूप सुभट

को नाश करने वाला जो धर्म है, उसको मैं शरण स्वीकार करता हूं ॥ ४७ ॥

भासुरसुरन्नसु दर—रयणालंकारगारव महग्घ । निहिमिव दोगच्चहर, धम्म जिणदेसि अ वदे ॥४८॥

देदिप्यमान उत्तम शब्दो से स्तुति किया गया, सुदर अलंकारादि की रचना से शोभायमान महत्वता का कारणभूत महामूल्य वाला, निधान की तरह अज्ञानरूप दरिद्रता को नाश करने वाला ऐसा जिनेश्वर भगवान द्वारा कहा हुआ जो धर्म, उसको मैं वंदन करता हूं ॥ ४८ ॥

चउसरणगमणसंचिअ—सुचरिअरोमंच

श्रुत (ज्ञान), धर्म, संघ और साधु, इनके विषय में शत्रुभाव आदि से जो कुछ पाप किया हो, और अठारह पापस्थान आदि अन्य पापस्थानों में से जो पाप लगे हों, उनको मैं अभी गुरु की साक्षी से निंदता हूं ॥ ४२ ॥

अन्नेसु अ जीवेसु य, मित्तीकरुणाइगोअरेसु कय। परिआवणाइ दुक्खं, इण्हिं गरिहामि तं पावं ॥४३॥

एवं दूसरे मैत्री और करुणादि के विषय वाले जीवों को जो परितापनादिक दुःख दिया हो, उस पाप को मैं इस समय गुरु की साक्षी से निंदता ॥ ४३ ॥

जं मणवयकाएहिं, कयकारिअ, अणुमइहिं

आयरिथं । धम्मविरुद्धमसुद्ध, सव्वं गरिहामि तं पावं ॥५४॥

मन वचन और काया से करन करान और अनुमोदने द्वारा आचरित किये हुए धर्म से विरुद्ध और अशुद्ध जो पाप, उसकी मैं गुरु साक्षि से निन्दा करता हूं ॥ ५४ ॥

अह मो दुक्कडगरिहा—दलिउक्कड दुक्कडो फुडं भणइ । सुकडाणुरायसमुइन्न-पुन्नपुलयङ्कुरकरालो ॥५५॥

अब दुष्कृत्यों की निंदा से चूर्ण कर दिये हैं उत्कट (महान्) दुष्कृत (पाप कर्म) जिसने और सुकृत्य का जो प्रेमभाव उससे विकस्वर हुई है पवित्र रोमराजी जिसकी ऐसा जीव नीचे प्रमाण स्पष्ट कहता है ॥ ५५ ॥

अरिहत अरिहंतेसु, अ च सिद्धत्तण च सिद्धेसु । आयार आयरिए, उवज्झायत्त उवज्झाए ॥५६॥

साहूण साहुचरिअ, देसविरइ च साव यनयाण । अणुमन्ने सव्वेसिं, सम्मत्त सम्म दिट्ठीण ॥५७॥

जो अरिहंतो म अरिहंतपना, सिद्धों मे सिद्ध पना, आचार्यों म आचार्यपना, उपाध्यायों में उपा ध्यायपना, साधुओं म साधुचरित्र, श्रावकों में देशविरतिपना और समकितदृष्टिया में समकित । है, इन सबका मैं अनुमोदन करता हू ॥५६॥ ॥५७॥

अहवा सव्व चिय वीअ-रायवयणाणु
सारि ज सुकड । कालत्तए वि तिविह, अणु
मोएमो तय सव्व ॥५८॥

अथवा वीतरागवचन के अनुसार जो जो
सुकृत (धर्म साधन) तीनों काल में किया हो,
उसको मन वचन और काया से अनुमोदन
करते हैं ॥ ५८ ॥

सुहपरिणामो निच्च, चउसरणगमाइ
आयर जीवो । कुसलपयडीउ बधए, बद्धाओ
सुहाणु बधाउ ॥५९॥

हमेशा शुभ परिणाम वाला जाव, अरिहंता-
दिक चार के शरण आदि का आचरण
शुभ प्रकृतियां को बांधता है, और

प्रकृतिया वधी हुई हो, उनको शुभ अनुबधवाला करता है ॥ ५६ ॥

मदाणुभावा बद्धा, तिव्वाणुभावाउ कुणइ ता चेव । असुहाउ निरणुबधाउ, कुणइ ति धाउ मदाओ । ६०॥

जो शुभ प्रकृति मंद रसवाली बाधी हो तो उसको तीव्र रसवाली करता है। अशुभ प्रकृति जो मन्द रसवाली बाधी हो, उसको अनुबध रहित करता है और अशुभ प्रकृति तीव्र रसवाली हो, उसको मंद रसवाला करता है ॥ ६० ॥

ता एय कायव्व, बुहहि निच्च पि सकिलेसमि । होइ तिवाल सम्म, असकिलेसम्मि सुगइ फलं ॥६१॥

इसलिए बुद्धिमान मनुष्य ने सक्लेश म अर्थात् रोगादि कष्ट के समय म ये चार शरणा का आच रण हमेशा (निरन्तर) करना। पर असक्लेश मे भी तीनों टाइम आचरण किया हो तो शुभफल दायक गति पुण्यानुबंधी पुण्य व बनवाला होता है ॥

चउरगो जिणधम्मो, न कओ चउरग सरणमवि न कय। चउरगभवच्छेओ, न कओ हा !! हारिओ जम्मो ।।६२।।

हा, बडे खेद की बात है कि—

जिस जीव ने ज्ञान शील तप और भाव, इन चार अगवाले श्री जिन धर्म का आराधन नहीं किया एवं अरिहतादिक चार प्रकार के शरणा का भी आराधन न किया, चार गति रूप ससार का छेदन

जिसने नहीं किया वह जीव मनुष्य जन्म हार गया समझना ॥ ६२ ॥

इय जीव! पमायमहारि, वीरभद्द तमेय मज्झयण । झाएसु तिम झसवझकारण निव्वुहसुहाण ॥६३॥

इस प्रकार हे जीव! प्रमादरूप महान् शत्रु को जानने वाला, मोक्ष को देनेवाला और मोक्ष के सुखों का अवध्य (निष्फल न हो, वैसे) कारण भूत, ऐसा इस अध्ययन का तीनों सध्या में ध्यान कर ॥ ६३ ॥

इति श्री चउसरण पयन्ना समाप्त ।

आउरपच्चक्खाणपयन्ना

(हिंदी अर्थ सहित)

शुरू म तीन आंबिल करके इस सूत्र को पढ़ना



देसिक्कदेसविरओ, सम्मद्दिट्ठी मरिज्ज जो जीवो । त होइ बालपंडिय-मरणं जिण सासणे भणियं ॥१॥

छ कायों की हिंसा म जो त्रस हिंसा है, उसका एक दश जो मारने की बुद्धि, उससे निरप राधी जीवों की निरपेक्षपने से हिंसा करना उससे, तथा असत्य वचनों से निवृत्त होते हुए जो सम

जिन रुचि जीव मरे, उस मरण को
बालपंडित मरण कहा है ॥ १ ॥

पंच य अणुव्वयाइं, सत्त उ
त्ग्सजइधम्मो। सव्वेण व देसेण व,
होइ देसजई ॥२॥

जिनशासन में सर्वविरति और दे
दो प्रकार का धर्म कहा है, इसमें सर्ववि
महाव्रत हैं और देशविरति के पांच अ
सात शिक्षाव्रत ये श्रावक के बारह व्र
बारह व्रतों से युक्त अथवा इनमें से
भी हो तो श्रावक इन बारह व्रतों का दे
युक्त होने से देशविरति होता है ॥ २

[illegible]
[illegible]

हूँ। स्वयं किये हुए पापों को पडिक्कमता हू। दूसरे से कराये हुए पापों को पडिक्कमता हूँ। अनु मोदन किये पापों को पडिक्कमता हू। मिथ्यात्व को पडिक्कमता हू। अविरति को पडिक्कमता हूँ। कषाय को पडिक्कमता हूँ। पाप व्यापार को पडि क्कमता हू। मिथ्या दर्शन परिणाम में, इस लोक मे, परलोक मे, सचित्त मे, अचित्त मे, पांचों इन्द्रियों के विषय में, अज्ञान अच्छा है ऐसा विचारा हो, झूठा आचार विचारा हो, बौद्धादिक दर्शन अच्छा ऐसा विचारा हो, क्रोध के वश विचारा हो, मान के वश विचारा हो, माया के वश विचारा हो, लोभ के वश विचारा हो, राग के वश विचारा हो, द्वेष के वश विचारा हो, अज्ञानपन से विचारा हो, पुद्गल पदार्थ और यश आदि की इच्छा के आधीन हो कर विचारा हो, मिथ्यादृष्टिपन से विचारा हो,

मून्छावश विचारा हो, संशय से विचारा हो, अन्य मतग्रहण की इच्छा से विचारा हो, गृद्धि (अत्यासक्ति) से विचारा हो, दूसरे का वस्तु प्राप्त करने की आशा से विचारा हो, तृषा लगने से विचारा हो, भूख लगने से विचारा हो, सामान्य मार्ग में चलते हुए विचारा हो, विषम मार्ग में चलते हुए विचारा हो, नींद में विचारा हो, नियाणे का विचार किया हो, स्नेह के आधीन विचारा हो, काम विकार के आधीन विचारा हो, चित्त की व्यग्रता से विचारा हो, कलह करने कराने के लिए विचारा हो, सामान्य युद्ध के विषय में विचारा हो, महान् युद्ध के विषय विचारा हो, मग करना चिंतवन किया हो, समह करना विचार किया हो, राज सभा में न्याय कराने के लिए विचारा हो, खरीदने और बेचने के लिए ... हो, अनर्थ दंड का विचार किया हो, अप

योग (इरादे) पूर्वक विचारा हो। साम इरादे रहित अनुपयोग (स्वाभाविक संकल्प विकल्प) से विचारा हो, देनदारी के आधीन होकर विचारा हो, वैरभाव से विचार किया हो, तर्क वितर्क पूर्वक विचारा हो, हिंसा का विचार किया हो, हास्य के वश विचारा हो, अतिहास्य के वश विचारा हो, अति रोष से विचारा हो, कठोर पापकर्म विचारा हो, भय विचारा हो, रूप विचारा हो, अपनी प्रसंशा विचारी हो, दूसरे की निन्दा विचारी हो, दूसरे की गर्हा (जाहिर निन्दा) विचारी हो, धनादिक परिग्रह प्राप्ति का विषय विचारा हो, दूसरे की निंदा करने का विचारा हो, दूसरे के दूषण तलाशने का विचारा हो, आरम्भ विचारा हो, विषय की तीव्र अभिलाषा रूप सरम्भ विचारा हो, पापकर्म का अनुमोदन रूप विचार किया हो जाव हिंसा के साधनों को प्राप्त करने का

विचारा हो, असमाधि से मर जाना ऐसा विचारा हो, गाढ कर्म के उदय से कष्टादि के समय अशुभ भाव विचारा हो, ऋद्धि के अभिमान से विचारा हो, अच्छे भोजन प्राप्ति के अभिमान से विचारा हो, सुख के अभिमान से विचारा हो, अविरति अच्छी है ऐसा विचार हो, संसार सुख की अभिलाषा पूर्वक मरण करना विचारा हो—

पसुत्तस्स वा पडिबुद्धस्स वा जो मे कोई देवसियो राइओ उत्तमट्ठे अइक्कमो वइक्कमो अइयारो अणायारो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

मेरे इस अनशन में पूर्वोक्त प्रकार से दिवस संबंधी या रात्रि सम्बन्धी, सोते हुए या जागते हुए भी अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार अनाचार

लगा हो, उसका मुझे मिथ्या दुष्कृत हो।

एस करेमि पणाम, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स। सेसाण च जिणाण, सगण-हराण च सव्वेसिं ॥ ११ ॥

यह मैं जिनेश्वरों में श्रेष्ठ वृषभ समान श्री वर्द्धमान स्वामी को और दूसरे गणधरों के साथ सभी तीर्थङ्करों को नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥

सव्वं पाणारंभ, पच्चक्खामित्ति अलिय-वयणं च। सव्वमदिन्नादाणं, मेहुणं परि-ग्गह चेव ॥ १२ ॥

इस प्रकार समस्त प्राणियों की हिंसा के आरम्भ को, असत्य वचन को, सब प्रकार की मैथुन को और परिग्रह को मैं

सहित बाह्य उपधि (माया) की मैं आलोचना करता हूं ॥ ३१ ॥

जह बालो जपंतो, कज्जमकज्जं च उज्जुयं भणइ । तं तह आलोइज्जा, माया मयविप्पमुक्को य × ॥३२॥

जैसे बालक बोलता हुआ कार्य और अकार्य को सरल भाव से कह देता है, वैसे माया और मद (अभिमान) को छोड़ कर सरल भाव से पापों की आलोचना चाहिए ॥ ३२ ॥

नाणंमि दंसणंमि य, तवे चरित्ते य चउसुवि अकंपो । धीरो आगमकुसलो, अपरिस्सावी रहस्साणं ॥३३॥

×"मायामोस पमुत्तूण" गाथा और भूं ठ को छोड़ के।

ज्ञान दर्शन और तप चारित्र, इन चारों म अचलायमान, धीर, और आगम मे कुशल पर अपने कहे हुए गुप्त पापों को दूसरे के आगे नहीं कहने वाले, ऐसे गुरु के पास आलोयणा लेना चाहिये ॥ ३३ ॥

रागेण व दोसेण व, ज भे अकयन्नुया पमाएण । जो मे किंचि वि भणिओ, तमह तिविहेण खामेमि ॥३४॥

राग द्वेष क वश या अकृतज्ञता से और प्रमाद वश होकर आपका जो कुछ अहित दूसरे को मैंने कहा हो, वह मन, वचन और काया से खमाता हूँ ॥

तिविह भणति मरण, बालाण बाल पंडियाण च । तइय पंडियमरण, ज कर

मे परिभ्रमण करता है ॥३८॥

कंदप्पदवकिब्बिस-अभिओगा आसुरी य समोहा । ता देवदुग्गइओ, मरणम्मि विराहिए हुति ॥३९॥

मरण की विराधना करने से कदर्पदेव, किल्विषिकदेव आभियोगिक (चाकर) देव, असुर (परमाधामि आदि दुष्ट) जातीय देव और समोह (भूतादि-अनुरूहतामिय) देव, इन नीच जाति के देवों की पाच दुर्गतिया होती है ॥ ३९ ॥

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा किण्हलेस मोगाढा । इह जे मरंति जीवा, तेसिं दुलहा बोही ॥४०॥

इस संसार में अन्दर मिथ्यादर्शन में आसक्त हुए, नियाण करके तथा कृष्ण लेश्या में मरते हुए जो जीव मरते हैं, उनको समकित दुर्लभ होता है ॥

सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेस मोगाढा । इह जे मरति जीवा, तेसिं सुलहा भवे बोही ॥४१॥

इस संसार में सम्यग् दर्शन में आसक्त हुए तथा नियाणा रहित शुक्ल लेश्या में वर्तते हुए जो जीव मरते हैं, उनको समकित सुलभ होता है ।४१।

जे पुण गुरुपडिणीया, बहुमोहा सम बला कुसीला य । असमाहिणा मरति, ते हुंति अणंतसंसारी ॥४२॥

ता एग पि सिलोग, जो पुरिसो मरण
समयम्मि । आराहणोवउत्तो चिंतंतो
राहगो होइ ॥६०॥

इस लिये जो पुरुष मरणान्त समय में आरा
धना के उपयोगवाला होइ एक भी श्लोक चिंतवता
रहे तो वह पुरुष आराधक होता है ॥६०॥

आराहणोवउत्तो, काल काऊण सुवि-
हिओ सम्म । उक्कोसं तिन्नि भवे, गंतूण
लहइ निव्वाणं ॥६१॥

आराधना करने के उपयोग वाला और अच्छी
आचरण वाला जीव अच्छी तरह आराधना पूर्वक
करके उत्कृष्टसे तीन भव में जा करके मोक्ष
करता है ॥ ६१ ॥

समणु त्ति अह पढम, बीय मन्वत्थ
मनओमि त्ति । सव्व च वोसिरामि, एय
भणिय समासेणं ॥६२॥

प्रथम तो मैं साधु हू और दूसरा सब पदार्थों
म संयम वाला हू इस लिये मैं सबको वोसिराता हूँ।
यह आराधना विषय सक्षेप से कहा गया ॥ ६२ ॥

लद्ध अलद्धपुव्व जिणवयण सुभासिय
अमयभूअ । गहिओ सुग्गइमग्गो नाहं मर
णस्स वीहमि । ६३॥

जिनवर भगवान के वचन रूप सुभाषित
(उत्तम उपदेश) को अमृत के समान मधुर और
पहले कभी नहीं पाया था, ऐसे मैंने प्राप्त किया

और सिद्धि रूप सद् गति का मार्ग ग्रहण किया है, जिससे अब मैं मरण से डरता नहीं हूँ ॥ ६३ ॥

धीरेण वि मरियव्वं, निद्धिरेण× वि अवस्स मरियव्व । दुण्हपि हु मरिअव्वे, वरं खु धीरत्तणे मरिउ ॥६४॥

धीर पुरुष को भी मरना पड़ता है और अधीर पुरुष को भी अवश्य मरना पड़ता है। दोनों को भी निश्चय मरना ही है, तो धीरता से मरना यह निश्चय करके अच्छा है ॥ ६४ ॥

सीलेण वि मरियव्व, निस्सीलेण वि अवस्स मरियव्व । दुण्हपि हु मरिअव्वे वरं खु सीलत्तणे मरिउ ॥६५॥

१ कायरेण (कायर पुरुष)

शील वाला भी मरता है और कुशीलवाला भी अवश्य मरता है। दोनों, को भी निश्चय मरना ही है, तो शीलपने से मरना अधिक अच्छा है॥६५॥

नाणस्स दंसणस्स य, सम्मत्तस्स य चरित्तजुत्तस्स। जो काही उवओगं, संसारा मो विमुच्चिहिसि ॥६६॥

जो कोई मनुष्य चारित्र सहित विशेष बोध स्वरूप ज्ञान का, सामान्य बोधस्वरूप दर्शन का और तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्व का उपयोग रखेगा यानि ज्ञानादि की आराधना मे साव धान रहेगा वह ही निश्चय करके संसार से मुक्त होगा ॥ ६६ ॥

चिरउसिय बंभयारी, पप्फोडिऊण सेसं

कम्म । अणुपुव्वीइ विसुद्धो, गच्छइ सिद्धि धुयक्लेसो ॥ ६७ ॥

बहुत समय तक ब्रह्मचारी पन में निवास किया है जिसने ऐसा ज्ञान वाला पं सब कर्मों का नाश करके सब क्लेशों से रहित हुआ अनुक्रम से विशुद्ध होकर सिद्धिगति में जाता है ॥ ६७ ॥

निक्कसायस्स दन्तस्स, सूरस्स वसमाइणो।
संसारपरिभीयस्स, पचक्खाणं सुहं भव॥६८॥

कषाय रहित, दान्त (पाँच इन्द्रिय और छठ मन, इनको दमन करने वाले) शूरवीर, उपसर्ग और संसार से भयभ्रांत होने वाले मनुष्य

पचक्खाण अच्छा होता है ॥ ६८ ॥

एय पचक्खाणं जो काही मरणदेस कालम्मि । धीरो अमूढ मन्नो, सो गच्छइ उत्तम ठाणं ॥ ६६ ॥

धीर और अमूढ सज्ञा (बराबर ख्यालात) वाला जो मनुष्य मरण के समय यह पच्चक्खाण करेगा वह मनुष्य सिद्धि गतिरूप उत्तम स्थान को पावेगा।

धीरो जरमरणविऊ, धीरो विन्नाणनाण-सपन्नो । लोगस्सुज्जोअगरो, दिसउ खय सव्वदुक्खाणं× । ७०॥

धैर्यता वाले, जरा और मृत्यु को जानने वाले

× दुरियाण दुरितों (पापों) का

विज्ञान और ज्ञान से संपन्न (युक्त) एवं समग्र लोक
में उद्योत के करने वाले ऐसे वीर जिनेश्वर हमारे
सब दुःखों का क्षय करे ॥ ७० ॥

इति आतुरप्रत्याख्यान पइण्णय समत्त ॥

पापप्रतिघात-गुण-
बीजा-धानसूत्र

णमो वीअरागाण, सव्वन्नूण, देविंद-पूइआण, जहट्ठि्ठयवत्थुवाईणं, तेलुक्कगुरूण, अरहंताण, भगवंताण।

वीतराग, सर्वज्ञ, देवेन्द्रों से पूजित, यथा स्थित वस्तुतत्ववादी और त्रैलोक्य गुरु ऐसे अरिहंत भगवंतों को नमस्कार हो।

जे एवमाइक्खंति-इह खलु अणाइ जीवे, अणाइ जीवस्स भवे, अणाइकम्मसंजोग निव्वत्तिए दुक्ख-

यत या सामि नियत्यकमइनोर स्वात पर कर्मों वा विदया हान से होता ९, और पर कर्मोदय काल (विलाप) तथा विव (कम दवस के) मत्कन्यास्वभाव से, वनी मन्दय स्वभाव) कम ? काल २ नियति (माता भाव) ३, पूर्वकृत कर्म ८ और पुरुषार्थ (ज्ञान) ५ इन पांच कारणों के मिलन से होती है ।

तस्स पुण विवागसाहणाणि चउसरण-गमणं दुक्कडगरिहा सुकडाणुसेवणा ॥

और इस भव्यत्वादि परिपाक के साधन— अरिहन्तादिक चार शरणों का स्वीकार दुष्कृत की गर्हा प्रकट निन्दा, और सुकृतों का अनुमोदन करने रूप होते हैं ।

अन्नेसु वा धम्मट्ठाणेसु माणणिज्जेसु पूयणिज्जेसु तहा माईसु वा पिईसु वा बंधुसु वा मित्तेसु वा उवयारिसु वा ओहेण वा सव्वजीवेसु, मग्गट्ठिएसु अमग्गट्ठिएसु मग्गसाहणेसु अ-मग्गसाहणेसु, जं किंचि वितहमायरियं अणा यरिअव्वं अणिच्छिअव्वं पावं पावाणुबंधि सुहुमं वा बायरं वा, मणेण वा वायाए वा काएण वा, कयं वा काराविअं वा अणुमोइअं वा, रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा इत्थ वा जम्मे जम्मंतरेसु वा, गरहियमेयं दुक्कडमेयं उज्झियव्वमेयं वियाणियं मए कल्लाणमित्त गुरुभगवंतवयणाओ एवमेअंति रोइअं सद्धाए,

अरिहंतसिद्धसमक्खं गरहामि अहमिणं,
दुक्कडमेयं उज्झियव्वमेयं इत्थ मिच्छामि
दुक्कड मिच्छामि दुक्कड मिच्छामि दुक्कड॥

उक्त चारों शरण स्वीकार करके मैं पापों की गर्हा (जाहिर निंदा) करता हूं। अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु सा ध्वी या दूसरे भी धर्म के स्थानभूत माननीय पूजनीय ऐसे गुणाधिक आत्माओं के प्रति, तथा मातापिता बन्धु मित्र या उपकारक जनों के प्रति या ओघतः (सामान्यतया मार्ग स्थित (समकित आदि युक्त) या अमार्ग स्थित (समकित आदि से रहित) ऐसे सब जीवों के प्रति, मार्ग के साधन पुस्तक आदि के प्रति अमार्ग के साधन शस्त्र दिक के प्रति मैंने जो जो कुछ विपरीत अविधि, भोगादिक से नहीं आचरने योग्य,

न्द न योग्य, ऐसा पापानुबंधी पाप सूक्ष्म या स्थूल, मन वचन या काया से, राग द्वेष या मोह से स्वयं ने किया, कराया या अनुमोदन किया हो वह पाप कल्याणमित्र भगवान गुरुदेव के वचन से मैंने निंदा के योग्य और त्याग करने के योग्य जाना है। यह ऐसे ही है ऐसी श्रद्धा से यही बात मुझे पसंद आई है, इस लिये अरिहंत और सिद्ध की समक्ष यह दुष्कृत (पाप) है और त्याग करने योग्य है, इस प्रकार गर्हा (निंदा) करता हूँ। इस विपरीताचरण सम्बन्ध से किया हुआ मेरा पाप मिथ्या हो, मिथ्या हो, मिथ्या हो, अर्थात् मेरे पापों की निवेदन कर के उसकी क्षमा याचना हूँ।

होउ मे, एसा सम्मं गरिहा, होउ मे

अकरणनियमो, बहुमयं ममे अंति इच्छामो अणुसर्टिं ठ अरहतायं भगवंताण गुरूणं कल्लाणमित्ताण ति ॥

यह मेरी दुष्कृत (पापों की) गर्हा अच्छी तरह शुद्ध भाव से हो। बार बार ऐसे पाप न होने पावे ऐसा नियम मुझे हो, ये दोनों ही बात मुझे बहुत पसन्द आई है इसलिए अरिहंत भगवंतों की तथा कल्याणमित्र ऐसे गुरुओं की हितशिक्षा को मैं इच्छता हूं।

होउ मे एएसिं संजोगो होउ मे एसा सुपत्थणा, होउ मे इत्थ बहुमाणो, होउ मे इओ मुक्खबीय ति ॥

मुझे इन अरिहंतादिक के साथ संयोग (समा

गम) हो, मुझे ऐसी अच्छी प्रार्थना करने का समय प्राप्त हो, इस प्रार्थना में मेरा बहुमान [आदर] उत्पन्न हो और इस प्रार्थना से मुझे मोक्षबीज [कल्याणकारक सफल साधन मार्ग] प्राप्त होवे।

पचेसु, एएसु, अहं सेवारिहे सिया, आणारिहे सिया, पडिवत्तिजुत्ते सिया, निर इआरपारगे सिया॥

अरिहंतादिक का सुयोग प्राप्त होने पर मैं उनकी सेवा करने लायक होऊं, आज्ञा पालने लायक होऊं, सेवा भक्ति युक्त होऊं और दोष रहित उनकी आज्ञा का पारगामी होऊं अर्थात् उनकी आज्ञा को यथार्थ पालन कर के संसार को पार कर जाऊं।

संविग्गो जहासत्तीए सेवेमि सुक्कडं,

अणुमोएमि सव्वेसिं अरहंताणं अणुट्ठाणं, सव्वेसिं सिद्धाण सिद्धभाव, सव्वेसिं आयरियाण आयार, सव्वेसि उवज्झायाण सुत्तप्पयाण, सव्वेसिं साहूण साहुकिरिय । सव्वेसिं सावगाण मुक्खसाहणजोग, सव्वेसिं देवाणं सव्वेसिं जीवाण होउकामाण कल्लाणासयाण मग्गसाहणजोगे ॥

फकत मोक्ष का अभिलाषा वाला होकर और यथाशक्ति यानि अपनी शक्ति को बिना छिपाये मैं सुकृतका सेवन करू । सब अरिहंतों के अनुष्ठान (धर्म देशनादिक) का मैं अनुमोदन करता हूं। ऐसे हा सब सिद्धों के सिद्धभावों का, सब आचार्यों के आचारों का, सब उपाध्यायों के सूत्र प्रदान का

सब साधुजनों की साधुक्रिया का, सब श्रावकों के मोक्ष साधन योग का, ऐसे ही इंद्रादिक सब देवों के और निकटभवी शुद्ध आशयवाले सब जीवों के मोक्षमार्ग के साधन योगों का मैं अनुमोदन (प्रशंसा) करता हूँ।

होउ मे एसा अणुमोअणा सम्मं विहि पुव्विया सम्मं सुद्धासया सम्मं पडिवत्तिरूवा सम्मं निरइयारा परमगुण अरहंताइ साम-त्थओ। अचिंतसत्तिजुत्ता ते हि भगवंतो वीय-रागा सव्वन्नू परमकल्लाणा परमकल्लाण हेऊ सत्ताणं मूढे अम्हि पावे अणाइमोहवा-सिए अणभिन्ने भावओ हियाहियाणं अभि-

मे मिया अहियनियचे मिया हियपन्नचे मिया आराहगे सिया उचियपडिवत्तीए सव्व-मचाए सहियं ति इच्छामि सुकड इच्छामि सुक्ड इच्छामि सुकड ॥

यह उपरोक्त सुकृत की अनुमोदना मेरे लिये सम्यग विधि पूर्वक, सच्चे शुद्ध आशय से सम्यग आचरण रूप से यथार्थ पालन करना और उसका यथार्थ निर्वाह निरतिचार भाव से होना, ये सब परम गुणयुक्त श्री अरिहंतादिक के प्रभाव से हो। क्योंकि अचिन्त्य शक्तिवाले वे भगवंत, वीतराग सर्वज्ञ परम कल्याणरूप होकर भव्यजनों के लिये परम कल्याण के हेतुभूत होते हैं। मैं मूढ़, पापी अनादि मोह से वासित और अनभिज्ञ (अज्ञानी)

फलय मुपउत्ते शि य महागए सुहफले सिया मुहप्पवत्तगे मिया परमसुहसाहगे सिया। अप्पडिबघमेय असुहभावनिरोहेण सुहभावबीयं ति सुप्पणिहाण सम्म पढियव्वं सम्म मोयव्वं सम्म अणुप्पेहियव्वंति ॥

तथा शुभ कर्म के अनुबंध इकट्ठे होने लगते हैं, भाव की वृद्धि से बहुत (सम्पूर्ण) होने लगते हैं, तथा प्रधान और शुभ भाव से अर्जित नियमा फलदायक सानुबंध शुभकर्म, अच्छी तरह प्रयोजित औषध से महारोग की तरह, यानि उत्तम निदान पूर्वक औषधने दी हुई दवा से जैसे महारोगों का विनाश होता है, वैसे ही एकान्त ... धारक शुभफलको करने वाला, शुभ प्रव परम्परासे परमसुख मोक्ष का साधक

होता है। इसलिये प्रनिधान (नियाणा) रहित, अशुभ भावना के निरोध से शुभ भावना का बीजरूप समझ कर सुप्रणिधानरूप इस सूत्र को प्रशांत भाव बड़ी एकाग्रता से अच्छीतरह पढ़ना एवं व्याख्यान विधि पूर्वक सुनना और उसके अर्थ के रहस्य का चिंतन करना चाहिये।

नमो नमियनमियाणं परमगुरुवीय-रागाणं, नमो सेसनमुक्कारारिहाणं, जयउ सव्व-न्नुसासणं परमसंबोहीए सुहिणो भवंतु-जीवा सुहिणो भवंतु जीवा सुहिणो भवंतु जीवा ॥

तवि गामिमि ॥ ८ ॥

निश्चय करके तिर्यंच गति के अन्दर अनेकों प्रकार के भेद वाली पृथिव्यादिक में, यानि चार पृथ्वीकाय अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक या साधारण वनस्पतिकाय के भवों में मैंने-अपने दूसरे या आपसा शस्त्र से-उन पृथ्वीकायादि जीवों का विनाश किया हो उसको भी मैं खमाता हूं ॥ ८ ॥

बेइंदिय तेइंदिय—चउरिंदियमाइएण मेएसु। ज मक्खिय दुक्खविया, तेवि य तिविहेण खामेमि ॥ ९ ॥

शंख आदि, बेइन्द्रिय, जू आदि तेइन्द्रिय और मक्खी आदि चौरिंद्रिय, ये आदि अनेकों भवों में मैंने ... को भक्षण किये या दुःख दिया हो उसको

भी मैं त्रिविध करके नमाता हूँ ॥ ९ ॥

जलयरमज्झगएण, अणेगमच्छाइरुव-धारेण । आहारट्ठा जीवा, विणासिया तेवि खामेमि ॥ १० ॥

गर्भज और संमूर्च्छिम जलचर पंचेद्रिय के भव में मच्छ, कच्छप, गुगुमार आदि अनेक रूपों का धारण करके मैंने आहार के लिए जिन जीवों को विनाश किया हो, उनको भी मैं खमाता हू ॥ १० ॥

छिन्ना भिन्ना य मए, बहुसो दट्ठूण बहुविहा जीवा । जलयरमज्झगएण तेवि य तिविहेण खामेमि ॥११॥

उलचर उ भ र मे मैंने बहुत प्रकार के जीवों को दुःख कर उनको अनेक प्रकार से छेदन भेदन किया हो उसको भी मैं त्रिविध करके खमाता हूँ।

मप्पमरिसरमज्मे थानर मज्जार मुगह मरमसु । ज जीवा चलनियाः दुक्खित्ता तेवि खामेमि ॥ १२ ॥

गभज और संमूर्छिम सर्प आदि सरिसृप थान सर्पादि सर्प गोह वानर आदि भुजपरि सर्प जीओं युक्त तथा शरभ (अष्टापद) आदि थलचर पंचेन्द्रिया, इन तिर्यंचों के भवों मे मैंने जो जीवों को छेदन भेदनादि द्वारा दुःखी करके विडंबना पूर्वक मारे हो उन को भी मैं खमाता हूँ ॥१२॥

सद्‌ लमीहगडप जाइसु वि नीरघायन

णिगासु । जे उवरत्तिया मए, णिणासिया ते-
नि खामेमि ॥ १३ ॥

नाव घातक आदि अशुभ कर्मसे मार्दूल (सिंह जाति विशेष) तथा सिंह (केसरी सिंह) गेंडा एव बाघ, चित्ता, रींछ आदि जीव घात करने वाली चतुष्पद जाति में उत्पन्न होकर मैंने जिन जीवों का क्रमन भेदनादि द्वारा विनाश किया हो उन को भी मैं खमाता हूँ ॥१३॥

होलाहगिद्धकुक्कुड–हंसवगाईसु सउण-
सएसु । ज खुद्दनसेण खद्धा, किमिमाइ तेवि
खामेमि । १४ ॥

कबड़ा, गाय, मुगा, हस,–बगला,

गाञा, बाज और चिड़ी आदि सैंकडा प्रकार के सम्मूर्च्छिमया गभज खेचर पचेंद्रिय पक्षियों के भव में मैंने भूख के वश होकर जिन कीड आदि जीवों का भक्षण किया हो उनको भी मैं खमाता हूँ ॥१४॥

मणुण्मु वि जे जीवा जिं भदियमोहिएण मूढ़ण । पारद्धिरमतेण विणासिया तेवि खामेमि ॥ १५ ॥

मनुष्य के भव में भी रसनेन्द्रिय के वश होकर मूढ़ (अज्ञानी) ऐसे मैंने शिकार खेलते हुए जिन जीवों का विनाश किया हो उनको भी मैं खमाता हूँ ॥१५॥

ज मज्भ मममज्जमधु--मकवणमाइएसु

जे जीवा । रसद्धा रसलोभेण, निणामिया तेत्रि खामेमि ❀ ॥ १६ ॥

रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर शरीर की पुष्टि के लाभ से मेरे द्वारा मद्य, मांस, मधु मक्खन एवं तीन दिन उपरांत के आचार और बासी रोटी आदि में जो जीव हैं, उन जीवों का भक्षण करके उनमें रहे हुए बेइन्द्रियादि जीवों का विनाश किया हो, उन का भी मैं खमाता हूँ ॥१६॥

×कामगिद्धेणज निय, परदाराईसु गच्छ माणेण । जे भूमिया दूहविया, तिविहेण तेत्रि खामेमि ॥ १७ ॥

❀ पत्तन की ताडपत्रीय प्रति में यह गाथा नहीं है

×"कामगिद्धेण" पाठान्तर ।

स्पर्शेन्द्रिय के वश होकर लम्पट होके मैंने अपने कन्या सधवा या विधवा रूप पर स्त्री और वेश्या आदि के साथ गमन करके जिन जीवों को दुःखाय हो यानि मानसिक दुःख दिया हो या दुःखित किये हो यानि शारीरिक कष्ट दिया हो, उनको भी मन वचन और काया से मैं खमाता हूं ॥१७॥

चक्खिंदिय घाणिंदिय-जीह इंदियवसगएण
जं जीवा । दुक्खमि मए ठविया, तेवि य ति-
विहेण खामेमि ॥१८॥

चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय और जिह्वेन्द्रिय के वश होकर मैंने जिन जीवों को दुःख में स्थापित किये हो उनको भी मैं त्रिविध करके खमाता हूं ॥१८॥

अक्कमिऊण आणा, काराविया जे उ

माणभंगेण । तामसभावगएण तरि य तिवि-
हेण खामेमि ॥ १६ ॥

और मेरे चीत्त न अपमान मानभंग होने के कारण उत्पन्न हुए क्रोध से जिन जीवों को दमन करके मेरी आज्ञा मनायी हो, उन को भी मैं त्रिविध करके खमाता हु ॥ १६॥

मामित्त लहीऊण, जे वद्धा घाइया य
मे जीवा । सवराहनिरवराहा तरि य तिवि-
हेण खामेमि ॥२०॥

स्वामीत्व अर्थात राज्यपदादि अधिकार प्राप्त करके मैंने अपराधी और निरपराधी जिन जीवों का बंधन किया हो और घायल किया या मारा उनको भी मन वचन काया से खमाता हु

अ॰भक्खाणं× दिन्न -मएण दुट्ठेण-
कस्सवि जस्स । माहण य लोहेण य, तंपि य
तिविहेण खामेमि ॥२१॥

दुष्ट ऐसे मैंने मन से क्रोध से या लोभ से
किसी भी मनुष्य को झूठा कलंक दिया हो उसको
भी त्रिविध करके मैं खमाता हूं ।२१॥

परधणयाइ हरिसो, पेसुन्न जं कयं मए
इण्हि । मच्छरभावगएणं, तंपि य तिविहेण
खामेमि ॥२२॥

ईर्ष्या भाव से प्राप्त होकर मैंने दूसरे किसी
भी जीव को आपदा आने पर हर्ष मनाया हो या

× णं जे मे, । + भ दुट्ठेण कस्सइ जियस्स ।

किसी का चुगली की हो तो उसका भी मैं निवारण करने लगाता हूँ ॥२२॥

रुद्दो खुद्दमहासो, जाओ रोगामु मिच्छ जाईसु । धम्मु त्ति इमो सव्वे रूनेहिं नि जन्थ मे नसुओ ॥२३॥

अनेकों म्लेच्छ जातियों में रौद्र और क्षुद्र रूप भाव मन से मैं उत्पन्न हो चुका हूँ, वहाँ पर मैंने धर्म यह शब्द कान से भी नहीं सुना ॥२३॥

परलोयनिप्पिवासो, जीवसयाणेगघाय-णापमत्तो । सजायो दुहहेऊ, जीनाण तपि खामेमि ॥२४॥

परलोक की पिपासा (चाहना) रहित

वमगण । अभिओगेण व दुक्खं, जाणं कय
तपि खामेमि ॥ ३३ ॥

सौधर्मादि देवलोक गत वैमानिक देव के भव में भी मैंने दूसरे की ऋद्धि में मत्सर (ईर्षा) करके
एवं लोभ सागर में डूब कर और मोह के वशीभूत हो कर अथवा आभियोगिक पन से यानि मालिक
की आज्ञा के आधीन होकर मैंने जिन जीवों को दुःख दिया हो, उन को भी मैं खमाता हूँ ॥३३॥

इय चउगइमावन्ना जे के विय पाणिणो
मए वहिया । दुक्खे वा भटविया, ते खामे-
मि अहं सव्व ॥३४॥

इस प्रकार चारों गति में भटकते हुए मैंने
जिन किन्हीं जीवों को प्राण से मुक्त किये हो या दुःख

में पटक हो, उन सबको मैं खमाता हूं ॥३४॥

सव्वे खमतु मज्झ, अह पि तेसिं खमा
मि सव्वसिं । ज केण वि अवरद्ध, वर चइ-
ऊण मज्झत्थो ॥३५॥

जिस भी जीव ने जो कुछ भी अपराध किया हो, वे सभी मुझे खमाओ और मैं भी उनकी तरफ के वैर को त्याग कर मध्यस्थ भाव में वर्तता हुआ उन सब जीवों को खमाता हूँ ॥३५॥

न हु मज्झ कोइ वेसो, सयणो वा इत्थ
जीवलोगम्मि । दसणनाणसहायो, इक्कोह नि-
म्ममो निच्च ॥३६॥

इस जीव लोक में निश्चय करके मेरा कोई भी बैरी या स्वजन नहीं है, किंतु दर्शन व ज्ञान से

स्वभाव वाला ऐसा मैं हमेशां अकेला और ममत्व भाव रहित हूँ ॥३६॥

जिण सिद्धा सरणं मे, साहू धम्मो य मंगलं परमं। जिण नवकारो मरणं, कम्मक्खय-कारणं होउ ॥३७॥

अरिहंत सिद्ध साधु और केवली भाषित धर्म, ये चार वस्तु परम मंगलभूत हैं, वास्ते इनका शरण एवं जिनेश्वरदेव कथित ऐसा परमोत्कृष्ट पंच परमेष्ठि महामंत्र मुझे कर्म क्षय का कारण हो ॥३७॥

हिययगुहाए नवकार—केसरी जाण संठिओ निच्चं। दुट्ठकम्मदोघट्टघट्ट ताण किं कुणइ? ॥३८॥

जिन मनुष्यों की हृदय रूपी गुफा

रूप केसरी हमेशा संस्थित (विद्यमान) है, उसको दुष्ट ऐसे आठ कर्म रूप हाथियों का समुदाय क्या कर सकता है ? कुछ नहीं ॥३८॥

नाहि जल-जलण-तक्कर-हरि-करि-संगाम-विसहरभयाइं । नासंति तक्खणेणं नवकार-पहाणमंतेण ॥३९॥

नवकार रूप प्रधान मन्त्र के प्रभाव से ज्वरादि व्याधि तथा पानी अग्नि चोर सिंह हाथी संग्राम और सर्प के भय तत्क्षण नाश हो जाते हैं ॥३९॥

जिणसासणस्स सारो, चउदसपुव्वाण जो समुद्धारो । जस्स मणे नवकारो, संसारो तस्स किं कुणइ ? ॥४०॥

जो नवकार मन्त्र जिनशासन का सार और

षउदह पूर्वोंका समुद्धार (रहस्यभूत) है, यह नवकार जिसके मन में स्मरण प्रकार से हमेशा विद्यमान है उसका संसार क्या कर सकता है ? ॥४०॥

इय खामणा उ एसा, चउगइमावन्नयाण जीवाण, । भावसुद्धीए महाकम्मक्खयकारणं होउ ॥४१॥

इस प्रकार चार गति में रहे हुए जीवों के साथ भावशुद्धि से की जाती यह क्षमापना महा कर्मक्षय की कारणभूत हो ॥४१॥

खरतर बिरुद सम्प्रापक श्री जिनेश्वर सूरि शिष्य

श्री जिनचन्द्रसूरि विरचित

क्षपक-शिक्षा-प्रकरण

हिंदी अनुवाद सहित

नमिऊ जिणवरवीरं धीरिमहेउं खलंत खवगस्स। धम्मोवएसरूवं, फणायं उस्सिंगिय वोच्छ ॥१॥

जिनवर भगवान् महावीर को नमस्कार करके एकचित्त होते हुए क्षपणक वाले की धैर्यता का

हेतुभूत, धर्मोपदेशरूप औत्सर्गिक कवच, यानि मन, का रक्षण करने के लिए बख्तर समान हित शिक्षा रहेगा ॥२॥

दुस्सहपरीसहोहा-मियस्स मज्जायमुत्ति-उमणस्स । श्रागारिंगियकुसलो, गवगस्स नियाणिउण गुरू ॥१॥

निसरिमचेद्व निज्जा-मणेकनिउणो नि-मुक्क नियकिचो । निद्दाहिं महुराहिं, गिराहिं अणुसासए कुज्जा ॥२॥ (युग्म)

मुश्किल से सहे जा सके वैसे कठोर परीषहों से पराभवित होने के कारण मर्यादा छोड़ देने को होगया है मन जिसका, ऐसे श्रमण पाने की-विसद्दरा, (मलित भावना की)

देख कर इ गिताकार से मानसिक परिणति को जान ने में कुशल एव नियामणा कराने में अत्यत निपुण और अपने कर्त्तव्य पढ़ना पढ़ाना आदि छोड़ दिये हैं जिन्होंने, ऐसे गुरु महाराज स्नेहवाली मधुर वाणी से शिक्षा देवे ॥३॥

रोगायक सुनिहिय !, निज्जिणसुपरीसह य निद्धलिओ । तो निन्वुढपइओ, मरणे आराहओ होसि ॥४॥

हे सुविहित ! तू विशेष प्रकार से अति बलवान होके रोगादिकों का और परीषहों को समस्त प्रकार से जीत ले, तो अणसण रूप प्रतिज्ञा का निर्वाहित करके मरने पर आराधक होगा ॥४॥

हत्थीव्व तुम अनह–थिउण आलाण-

समभिव मेर । हत्थिनियत्थाणीए, गुरुणो
ि य अगगलेऊण ॥५॥

अकुममरिस अ ाधी-रिऊण तेसिं च
सदुचाएस पि । अगपडिचारगे ि हु, निपग
वि परम्मुहे ठविउ ॥६॥

अच्चतमत्तिजोऊ—हलागय पच्छगपि
महुलोय । विपरम्मुहिय निरवज्ज-लज्जरज्जु
च तोडित्ता ॥७॥

पडिनक्खरिद्धिकुसुम, पत्तापरिग्गहपसाहिय-
च्छाय । भममाणो सीलवण, भजिहिसि लहु
महाभाग ! ॥८॥ (कलापक)

हे महा भाग ! मस्त हाथी के तुल्य

(हाथी को बांधने के) स्तम्भ समान मर्यादा को उखाड़ कर हस्तीपक (महावत) के समान गुरु का भी अपमानित (तिरस्कृत) करके और अंकुश जैसे गुरु के सदुपदेश को भी न मान कर, अपनी सेवा करने वाले अपने प्रतिवादकों को भी अत्यन्त अप्रीति वाले करके, अत्यन्त भक्ति और देखने के कुतूहल में आये हुए प्रेक्षक (दर्शन करने वाले) लोगों को भी पतित मानने वाले करके और निर्मोप ऐसी लज्जारूप रस्सी का तोड़ के इधर उधर भ्रमण करता हुआ तू प्रतिबद्ध यानि निरन्तर घने से मिली हुई ऋद्धि रूप फूल हैं जिस में और प्राप्त हुआ धनादि नवविध परिग्रह रूप विस्तीर्ण छाँया है जिसमें, ऐसे, शील (सदाचार) रूप वन जल्दी नष्ट कर सकेगा ॥४८॥

खंडिहिसि समिइगिह–भित्तिसंचय चूर-
यस्समि अमेस । गुत्तिगइंगग पि हु दलि
हिसि सुगुणावगास्सेणि ॥६॥

पांच समिति रूप घर की भीतों को खंडित कर देगा, तीन गुप्ति रूप भूमि (कोट-बंडी या घाट) को अंशों का ही चूरेचूरा कर डालेगा और उत्तम गुणरूप दुकानों की श्रेणी को दलन कर डालेगा ॥६॥

नूण न भद्दकुल म-भनोसि इय लोगप्प-
वायरेणुहिं । अप्पु डिज्जिहिसि चिर, मरि-
हिज्जसि वा(या)लगजणेण ॥१०॥

ऐसा होने पर निश्चय करके उत्तम कुल का अच्छा हुआ नहीं है' ऐसे जनप्रवाद (लो
रूप सें तेरी आत्मा मलिन होवेगी,

(अज्ञानी) लोक इसी अपवाद से बहुत काल तक याद करेंगे ॥१०॥

पुत्ताणुभूयरायाइ–विहियसम्माणाइय-
गुणाण । चुक्किहिसि कुगइगड्डा–वडणेण अह
निणस्सिहिसि ॥११॥

प्रथम गृहस्थ पन में अनुभवे, ऐसे राजादिक से हुए सम्मान आदि गुणों से रहित हो जायगा और कुगति रूप खड्डे में पडने से तेरी आत्मा का विनाश हो जायगा ॥११॥

ता भद्द ! समीहियकज्ज––सिद्धिविग्घा-
ओ विरमसु इमाओ । कटगवेहुवमाओ, असमाहिपयाओ इण्हिं पि ॥१२॥

इस वास्ते हे भद्र ! इच्छित कार्यसिद्धि मे

प्रभूत और कांटा लगाने के तुल्य, ऐसे इस समसाधि स्थान से तू हाल भी पीछा हट जा ॥ १२॥

तह खुड्डकुमारो इव, तुम पि अणुमरसु सम्मुद्धीए । इयिह पि'गुट्ठ्गाइय'–मिचाई गीइया अत्थ ॥१३॥

तथा क्षुल्लक कुमार (बाल उमर के साधु) की तरह उत्तम बुद्धि से "गुट्टु गाइय" इत्यादि गीतिका (गाथा) के अर्थ को इस समय तू भी बार बार स्मरण कर ॥१३॥

निव्वाहिया हु तुमए, कोडीवयणिज्ज-वज्जिएणेव । अहुणा कागिणि निन्हणे वि वीनसयुव्वहसि ॥१४॥

क्रोड़ गमा देने की निंदा से रहित

मरह मैंने इतना टाइम कठिनता से निर्वाहित कर लिया और अब इस समय ग्ब बाकियों का निर्वाह करन म भी प्रामद पना करता है, यह योग्य नहीं ॥१५॥

तिण्णो महासमुद्दो, तरियध्य गोपय तुह-
पासि। समइक्क तो मेरु, परमाणू चिट्ठइ पत्तो ॥

भाग्यशाली ! तुमने महासमुद्र तिर लिया है अब तो सिर्फ गोपद (गौ के पग से पड़ा गड्ढा) ही तेरे तिरना बाकी रहा है, मेरू पर्वत को अतिक्रमण कर लिया अब तो मात्र परमाणु ही आगे पड़ा है ॥

ता धीर ! धरसु अच्चंत-धीरिम चयसु धीनपयहरं । हरिण कनिम्मल नियकुलं पि सम्म विभावेसु ॥१६॥

वास्ते हे धीर । अत्यंत, धैर्यता को धारण

कर, नामदपन का प्रकृति या त्याग कर, चंद्रसमान निर्मल वैसे अपने कुल का भी अच्छी- तरह विचार कर ॥१६॥

मल्लोव्वपल्लिउण, पमायपरचक्कम-क्कहलाए । गत्थर परपुपत्य,' जइमत्तीए परक्कमसु ॥१७॥] }

जस काइ मल्ल प्रतिमल्ल को पराभजित करता है वैसे प्रमाद रूप शत्रु के दल को एकदम परा भजित करके इसी प्रस्तुत आगसण रूप ,अर्थ में यथाशक्ति उद्यम कर ॥१७॥

परिमावेमुप पयइ—ण— सु दरस महाणु-गामिर्य । मुज्जो ,प। दुल्लहुण, अणग्घाण ॥१८॥ ,

मुह वर मरणं । न य लज्जणाय, काउ,
जावज्जीव पि जगमज्झे ॥२२॥

शूर पने की जन प्रशंसा से फूलाये हुए और उत्तम गुनवान ऐसे शूराभिमानी मनुष्य को रण मैदान में मर जाना अच्छा परन्तु यावज्जीवन पर्यंत लज्जित होना पड़े वैसे भागजाना आदि करना योग्य नहीं ॥२२॥

ममणस्स माणिणो उ—ज्जयस्स नि-
हणगमणं पि होइ वरं । न-य नियपयइहूण
भंगेण; इयरजणजपण म्मि ॥२२३॥

साधुत्व का मान धराने वाले साधु को अपने साधुत्व में उद्यत (सावधान) रहते हुए अगर मरण होजाय तो भी अच्छा, लेकिन अपनी

प्रतिज्ञा का भंग करके इतर (अज्ञान) जनों तरफ की निन्दा को सहन करना योग्य नहीं ॥ ३॥

एक्कस्स कए नियजीवियस्स कों जपरा करेज्ज ? नरो । पुत्तपोत्ताईण, समरम्मि पलायमाणोव्व ॥२४॥

कौन ऐसा मनुष्य है ? जो एक अपने जीवित के लिए संग्राम भूमि से भागते हुए कायर मनुष्य का तरह अपने पुत्र पौत्रादि पीढ़ीयां तक की बदनामी को कर डाले ॥२४॥

तह अप्पणो कुलस्स य, संघस्स य, मा हु जीवियत्थीओ । कुणसु जणे जपणय, आणि-यजिणवयणसारो वि ॥२५॥

तथा जिन वचन का सार (तत्त्व) जनित

हुआ भी तू जीवित का अभिलाषी होकर लोक में अपना जल का और सब का निश्चय बदनाम। मत कर ॥२४॥

ण्‍ नाम तहऽन्नार्णा, समारपवड्ढणाए लेमाए । तिव्वाए वेयणाए ममाउला तह रुति निइ ॥२६॥

यदि वैसे अज्ञानी जीव समार वृद्धि कारक लश्याओं में वर्त्तते हुए और अत्यंत तीव्र वेदना से अकुल व्याकुल होने पर वैसी (पथ्य भोजन दि) सताप रूप वृत्ति को कर लेते हैं ॥२६॥

किं पुण जइणा समार-सव्व-दुक्ख-क्खय यरेंतेण । बहुविन्दुक्खरसमत्ता—णएण न जिर्न करेयव्वा ? ॥२७॥

तो फिर ससार क सब दु खों का क्षय करने को तत्पर हुए और अत्यन्त तीव्र दु खों के रस को जानने वाले ऐसे यति (मुनियो) न ऐसे अवसर म सन्तोषरूप वृत्ति क्यों नहीं करनी ? अवश्य करनी चाहिये ॥८७॥

तिरिया वि तोडपीडा–विहुरियदेहा वि गोगपोयलया । किं अणसण पवन्ना, कबल-सबला सुया ? न तए ॥८८॥

शरीर की सधियाँ टूट जाने पर उत्पन्न हुई पीडा से अशक्त देह होने पर भी तिर्यंच जाति के कबल और सबल नाम के गौ के बच्चों ने अणसण स्वीकार किया, यह क्या तूने नहीं सुना ? ॥८८॥

तच्छतण तच्छलो पयर्इए

तिग्यिो य । अणमणविहिं पवन्नो, वेयरणी वानरो य तहा ॥२६॥

तथा श्रीकृष्ण के समय द्वारिका में वैतरणी नाम का महावैद्य था, जो परिणाम की अशुभता से मर कर बंदर हुआ, वहां पर शरीर, मल तथा प्रकृति से तुच्छ और जाति से तिर्यंच होते हुए भी उसने अणसण विधि को स्वीकारी ॥२६॥

खुद्दो ति पिपीलियविहिय तिव्ववियणो वि जायपडिबोहो । मासद्धमणसणविहिं, पडिवन्नो कोसितो सप्पो ॥३०॥

क्षुद्रस्वभाव का और कीडीओं ने करी हुइ तीव्र वेदना वाला होते हुए भी भगवान महावीर के उपदेश से जिसको प्रतिबोध हो गया है,

-वैसे चंडकौशिक सर्प ने अर्द्धमास (१५ दिन) की अणसण विधि स्वीकार की ॥३०॥

जम्मतरजणणी की—मलस्स वग्धीभव-
म्मि लद्धसुई। तिरिया वि छुहावेयण—मग-
णिय तह सठियाऽणसणे ॥३१॥

पूर्वभव में सुकोशल मुनि की माता वाघणी के भव में जाति से तिर्यंच होते हुए भी जातिस्मरण हो जाने पर भूख का वेदना को न गिनती हुइ वैसे उत्तम अणसण में स्थित हो गइ ॥३१॥

जइ ता पसुणो वि इमे, अणसणमकरिंसु थिरसमाहिपरा। ता नरसीहो वि तुम, सुन्दर! तं कीस न करेंसि ? ॥३२॥

यदि उपरोक्त पशु भी स्थिर

हुए अणसण कर चुके तो हे गु दर ! (भाग्यशाली) नु नरसिंह होते हुए भी क्या स्थिर समाधि को क्या नहीं करता ? ॥३२॥

देवीदारण तहो—वसग्गजोगे सुदसण-गिही वि । जनि मरणमज्झवसियो, पडिवन्न-वया न उण चलिओ ॥३३॥

सुदर्शन सेठ गृहस्थ होते हुए भी अभया रानी आदि स्त्रियों के वैरी अनुकूल उपसर्ग होने पर मरण स्वीकार कर लिया पर तु स्वीकार हुए व्रतों से चलायमान नहीं हुआ ॥३३॥

तह मच्चराइउस्स—गजणियविग्घ सुति वमगणितो । चदावडिमयनिनो, सुगइ पत्तो अचलसत्तो ॥३४॥

तथा निश्चल सत्त्ववाला चन्द्रावतंसक राजा समग्र रात्रि के कायोत्सर्ग में उत्पन्न हुई तीव्र वेदना को न गिनता हुआ शुभभावना में आरूढ होकर सद्गति को प्राप्त हुआ ॥२८॥

गोटे पाओवगओ, सुबंधुणा गोमए पलीवियम्मि । डज्झंतो चाणक्को, पडिवन्नो उत्तम अट्ठं ॥२९॥

गोकुल में पादपोपगमन अणसण स्वीकार किया हुआ चन्द्रगुप्त राजा का मन्त्री चाणक्य सुबंधु मन्त्री ने छाणों का भूसा सुलगा दिन पर जलता हुआ भी आराधना रूप उत्तम अर्थ को प्राप्त हु ॥२९॥

नद गिद्दिणो वि तहा,

समाहिओ अद्दिगयत्ये। जाया तुमं पि ता सम-
णसीह ! त तुणसु सन्निसेसं ॥३६॥

इस प्रकार यदि गृहस्थ लोग भी अपने इच्छित पदार्थ की सिद्धि निश्चय में अस्खलित (अभग्न) समाधि वाले हुए हैं, तो हे श्रमणसिंह ! (साधुओं में सिंह समान हे मुनि !) तू भी अति विशेषता से उस अस्खलित समाधि को धारण कर ॥३६॥

मेरुव्व निप्पकंपा, अक्खोभा सागरोव्व
गभीरा । धीमंतो सप्पुरिसा, होंति महल्ला-
वईसु वि ॥३७॥

धैर्यवान् सत्पुरुष महान् आपत्ति के समय भी मेरुपर्वत की तरह निष्प्रकंप एवं समुद्र की तरह अक्षोभ्य (अचल) और गंभीर होते हैं ॥३७॥

धीरा निमुक्तसगा आयातोरियभरा अप-
रिकम्मा । गिरिपभारमदगया, बहुमावय-
सङ्कड भीम ॥३८॥

धीर(१२)सियवद्धकच्छा, ममउत्तवि
हारिणो सुयमहाया । माहति उत्तमह, साव-
यदाढतरगया वि (मुम) ॥३९॥

धैर्यता वान, धन स्वजनादि के संग से रहित,
आत्मावलंबी, शरीरादि शुश्रूषा रहित, और अनेकों
श्वापद (सिंहादि) जानवरों से भरे हुए भयंकर
पवर्तों का थेणि में निवास करने वाले एव धैर्यता
में अत्यंत तत्पर वाल, समयोक्त विधि से विहार
करने वाले, श्रुतज्ञान का सहायता वाले, ऐसे
मुनि, सिंहादि श्वापदों की दाढाओं में ग

उत्तम ध्यान मे लीन हो कर आराधना रूप उत्तम अर्थ को साधते हैं ।।३८३६।।

भालुकीए अरुरुण, खज्जतो घोरवे-यणऽट्टो वि। आराहण पत्तो, भाणेण अवतिसुकुमालो ।।४०।।

सियालनी ने निर्दयतया खाने पर घोर वेदना से पीडित होते हुए भी अवन्तिसुकुमाल मुनि उत्तम ध्यान बल से आराधना को प्राप्त हुए ।।४०।।

मुग्गिल्लगिरिम्मि सुकोसलो वि सिद्धत्थ-दइयओ भयव । वग्घीए खज्जतो, पडिवन्नो उत्तम अट्ठ ।।४१।।

चारि त्र ग्ण रत्नकार्य के मालिक भगवान सिद्ध

पर मानि न भ्रमण ने अग्नि सुलगा दने पर उत्तम अर्थ को प्राप्त किया ।।४२।।

गर जिय मयर पि हु कुरुदत्तसुओ ठि
ओ उ पडिमाए । माएयनयरबाहिं, गोहरणे
दुट्टियदिएणग्गी ।।४३।।

इसी प्रकार भगवान् कुरुदत्तपुत्र नाम के मुनि साकेत (अयोध्या) नगर के बाहर गोकुल के अन्दर कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित होने पर निश्चय किसी दुष्ट ने सुलगाई अग्नि से पीडाते हुए भी शुभ ध्यान से उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए ।।४३।।

उद्दायणरायरिसो, उक्कडविसजेयण-
परद्धो वि । अगिगणियदेहपीडो, पडिवन्नो
उत्तम अट्ठं ।।४४।।